

स बं पुंसां परो धर्मो बतौ भक्तिरधोऽजये ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।



गोपबन्धुन प्रदि रशिर शत्रुः कृष्णः कृष्णः कृष्णः

अहेतुन्यप्रतिहता मयात्मा मुप्रसीदति ॥

सबोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको खानन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । भक्ति अधोऽजयकी अहेतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो धर्म व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ }

गौराब्द ४८७, मास-श्रीधर १, वार-संकर्षण,
सोमवार, ३१ आषाढ़, सम्बत् २०३०, १६ जुलाई, १९७३

{ संख्या २

जुलाई १९७३

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

ब्रह्मादिवेवानां श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ११।६।७-१४)

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।

यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तं मुमुक्षुभिः कर्ममयोः पाशात् ॥

देवताओंने इस प्रकार कहा— हे नाथ ! योगीलोग कर्मरूपी दृढ बन्धनसे मुक्ति पानेकी इच्छासे अन्तःकरण या हृदयमें केवल त्रिनका ही ध्यान करते हैं, हम आपके उन पादपद्मयुगलका साक्षात् दर्शन पाकर बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन एवं वाक्य द्वारा आपको प्रणाम करते हैं ॥७॥

त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ।
नैतैर्भवानजितकर्मभिरज्यते वै यत् स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥८॥

हे अजित ! आप मायाके गुणसमूहमें नियन्ताके रूपमें रहकर त्रिगुणमयी मायाद्वारा अपनेमें ही महत् तत्त्व आदि अचिन्तनीय प्रपंचकी सृष्टि-स्थिति-संहार लीला किया करते हैं। परन्तु इन सभी कर्मद्वारा उत्पन्न पाप-पुण्यादि फलके द्वारा आप लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप अविद्या आदि दोष-सम्बन्ध रहित होकर अनावृत आत्मानन्द में रमण कर रहे हैं ॥८॥

शुद्धिर्नृणां न तु तथेढ्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रबृद्ध सच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥९॥

हे जगद्बन्धनीय ! हे पुरुषोत्तम ! आपकी विमल कीर्तिके श्रवणद्वारा उत्पन्न उत्तम श्रद्धाद्वारा साधु पुरुषोंकी जिस प्रकार विशुद्धि होती है, विषय-वासनायुक्त मनुष्य की उपासना, वेदार्यश्रवण, अध्ययन, दान एवं तपस्या आदि द्वारा उस प्रकार विशुद्धि नहीं होती ॥९॥

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिराद्रंहृदोह्यमानः ।
यः सात्त्वतः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽचितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥१०॥

हे प्रभो ! मुनि लोग परम मंगल प्राप्त करनेके लिए प्रेमाद्रंहृदयसे जिनकी चिन्ता करते हैं, आश्रित भक्त लोग समान ऐश्वर्य पानेके लिए वासुदेवादि व्यूहमें जिनकी आराधना करते हैं एवं उनमेंसे कुछ आत्मज्ञ धीर पुरुष स्वर्गको भी लांघकर वैकुण्ठ पद प्राप्तिके लिए तीनों कालोंमें जिनकी पूजा करते हैं, आपके वे ही पादपद्म हमारी विषय-वासना समूहके जलानेवाले आगस्वरूप हों ॥१०॥

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वान्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ।
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परोष्ठः ॥११॥

हे जगदीश ! यज्ञकारी व्यक्ति संयत हाथोंसे हविःका भाग ग्रहण कर तीनों वेदों द्वारा निश्चित किये विधानके अनुसार यज्ञाग्निमें जिनके अधिष्ठानकी चिन्ता करते हैं एवं योगीलोग अणिमादि सिद्धि पानेकी कामनासे अध्यात्मयोगसे जिनका ध्यान करते हैं, परम भागवतजनों द्वारा सबत्र पूजित आपके ऐसे चरणकमल हमारी विषय-वासना-राशिके दहन करनेवाले आग स्वरूप हों ॥११॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पृद्धिणी भगवती प्रतिपत्निवच्छीः ।
यः सुप्रणीतममुयाहंणमावदन्नो भूयात् सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥१२॥

हे विभो ! भगवती श्रीलक्ष्मीदेवी आपके वक्षःस्थलरूप अपने निवास स्थानमें पयुषिता (बासी) वनमालाको देखकर ईर्ष्यायुक्त होने पर भी भक्तोंके द्वारा अपित होने के कारण आप लक्ष्मीदेवीके प्रति अनादर प्रदर्शन कर ऐसी बासी वनमाला द्वारा सम्पन्न पूजाको स्वीकार करते हैं। हे देव ! ऐसे भक्तवत्सल आपके चरणकमल हमारी विषय-वासना राशिके विनाशक आग स्वरूप हों ॥१२॥

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्बोः ।

स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन् पादः पुनातु भगवन् भजतामद्यं नः ॥१३॥

हे भूमन् (समस्त सुखोंके स्वरूप) ! हे भगवन् ! बलिराजके बन्धनके समय आपके श्रीचरणोंने तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर विजय ध्वज रूपसे एवं त्रिलोकविहारिणी गङ्गादेवी ने उनकी पताका रूपसे शोभा प्राप्त की थी। ऐसे आपके श्रीपादपद्म उस समय असुरोंके लिए भय एवं नरक प्रदान करनेवाले तथा देवताओंके लिए अभय एवं स्वर्ग प्रदानकारी साबित हुए थे। आपके ऐसे श्रीचरण भजनशील हमारे सभी पापोंका विनाश करें ॥१३॥

नस्योत्तगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ।

कालस्य ते प्रकृतिपुरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥१४॥

हे देव ! परस्पर युद्धविग्रहादि पीडित ब्रह्मादि जीव नासाबद्ध गौओंकी तरह प्रकृति-पुरुषातीत कालरूपी जिस नियामक पुरुषके अधीन होकर वत्तमान हैं, पुरुषोत्तम स्वरूप ऐसे आपके श्रीचरणकमल हमारा मंगल विधान करें ॥१४॥

(क्रमशः)

प्रभु ! सरण दीजें

थोरे जीवन भयो तन भारो ।
 कियो न संत समागम कबहुँ, लिया न नाम तुम्हारी ।
 अति उनमत्त मोह-माया-बस, नहि कछु बात विचारो ।
 करत उपाय न पूछत काहू गनत न खाटो-खारो ॥
 इंद्रो-स्वाद-बिबस निसि-बासर, आप अपुनपो हारो ।
 जड़ आँडे में चहुँ दिसि पंर्यो, पाउं कुलहारो भारो ॥
 बाँधी मोट पसारि त्रिविध गुन, नहि कहुँ बीच उतारो ।
 देख्यो सूर बिचारि सीस परि, तब तुम सरन पुकारो ॥

अप्राकृत वस्तुका ज्ञान

कष्ट व्यक्ति दो प्रकारके हैं—(१) भोगी या Elevationist और (२) त्यागी या Salvationist । भोगी एवं त्यागी—दोनों ही दूसरे के आत्मोपकारके कार्यमें उदासीनता प्रकाश करते हैं । जो आत्मा दूसरे आत्माके प्रति उदासीन है, उस पर भगवान् दया नहीं करते । भगवान् विभुचित् (Absolute infinity) and जीव अणुचित् (Absolute infinitesimal) हैं । अणुके अंश या fragment में यदि कोई चोरी कर कुछ रख दें और सोचें कि भगवान्को वह अंश नहीं दूँगा— तो विभुचित् भगवान् उनके निकट प्रकाशित नहीं होंगे ।

दूसरोंकी वञ्चना करनेका नाम कपटता है । मेरे बन्धु-बान्धवों आदि सभीकी वञ्चना कर अपने अपस्वार्थ धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके लिए चेष्टा करूँगा, ऐसी दुबुद्धि कपटता है । सभी वास्तव सत्ताको विलोप या अस्वीकार करनेकी चेष्टा कपटतासे उत्पन्न है । विभु (Absolute)को बचना करनेकी इच्छा बहुत बड़ी कपटता है ।

'माया व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि' वाक्यसे यह जाना जाता है कि सभी कार्य यदि हम कृष्ण-सम्बन्धसे करें, तो माया को हम उत्तीर्ण हो सकेंगे । अखिल-रसामृत-मूर्ति श्रीकृष्णकी सर्वांगीण सेवा छोड़कर आत्माका और कोई कर्तव्य नहीं है ।

हमारी आत्मा अभी निद्रित अवस्थामें है । मन एवं शरीरमें आत्माका सामर्थ्य deligated (प्रदत्त) हुआ है । हम आलसी हो गये हैं—कृष्णसेवा नहीं करते, बाकी सब कुछ करते हैं । इसलिए भगवान् श्रीगौरचन्द्रने 'नाम्नामकारि' श्लोक द्वारा अपने दुर्बलका बात कहा है । विश्वके सभी जीवोंके प्रति उनकी एकमात्र व्यवस्था या prescription है— 'कीर्त्तनीयः सदा हरि' अर्थात् सर्वक्षण कृष्णकीर्त्तन । सभी शब्दोंको कृष्णसे सम्बन्धित करने पर ही सुविधा होगी ।

कृष्णकी स्मृति कृष्णके श्रवणद्वारा ही होती है । कृष्णके श्रवणके अभावसे कृष्णकी विस्मृति होती है । कृष्ण-वस्तुके सम्मुख होने को छोड़कर और कोई दूसरा उपाय नहीं है । मनुष्य जब स्वयं अपनेको आप ही जान पाता है, तब वह "ब्रह्मयोनि कर्तारमीशं पुरुष" में वर्णित भगवान्को जान पाता है । कृष्णज्ञान प्राप्त नहीं करनेसे उनके अंश स्वरूप परमात्मा तक ही आवद्ध होकर रहना होगा । कृष्णज्ञान उनके अंश परमात्माकी निकटता तक सीमित नहीं है । कृष्णके साथ मेरी जो वृत्ति function है, वह कृष्ण-सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करने पर प्रकाशित होती है । निकटवर्त्ती होनेके पश्चात् मेरी क्रिया आरम्भ नहीं हो जाती । इसलिए 'परमात्म भक्ति' शब्दका व्यवहार किया गया

है। 'परमात्म' शब्दसे हम साधारण रूपसे जो समझते हैं, उसके लिए भक्ति करनेकी आवश्यकता नहीं होती। निकटतामें ही आंशिक प्रयोजन प्राप्त होता है। इसलिए परमात्म-प्राप्ति कही जाती है। किसी वस्तुको भोगकी वस्तु न बनाकर all pervading या सर्वव्यापकमें किसी वस्तुको पीछे न रखना अर्थात् समस्त को ग्रहण करना ही परमात्म-सांनिध्य या परमात्माकी निकटता है। किन्तु भगवान्की सेवा या भागवत द्वारा निर्दिष्ट परमात्म-भक्तिमें चेतनकी वृत्तिके नित्य स्वभावकी उन्नति होती है।

'ब्रह्म' शब्दमें कुछ विषय छोड़ दिया गया है। परमात्मामें भूमात्व (प्रचुरता या बहुलता) प्रकाशित हुआ है। 'ज्ञान' अर्थमें 'भगवज् ज्ञान' को कहा गया है। 'विज्ञान' अर्थमें परिकर वैशिष्ट्य (विशिष्टता) के साथ भगवानका ज्ञान कहा गया है। केवल-ज्ञानमें निर्विशेष भाव आ सकता है। किन्तु विज्ञान उसका संशोधन एवं परिपूरण कर सकता है।

भजनीय वस्तु, भक्त एवं भजन—ये तीनों ही नित्य हैं। means (उपकरण या उपाय) या सीढ़ी द्वारा दूसरे तलेमें उठ गया। उसके पश्चात् सीढ़ीको फेंक दिया, ऐसा नहीं। सीढ़ी भी दो तलेके साथ सभी समय लगी हुई है। हमने जो कुछ ढेरके ढेर फालतू बातें या बेकार बातें सुन रखी हैं, उन सबको dismantle (परित्याग) कर निर्मल होना ही अनर्थ-निवृत्ति है।

मैं कृष्णविस्मृत जीव हूँ। कृष्णका स्मरण पुनः कैसे होगा, इसकी व्यवस्था श्रीमद्भागवतमें दी गई है। वह व्यवस्था है—
तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयः उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

बृहत्में जिनकी निष्ठा है, ध्रुवमें जिनकी निष्ठा नहीं है, वे ही ब्रह्मनिष्ठ हैं। बृहत्में निष्ठा होनेके कारण ही वे गुरु हैं। ध्रुवमें निष्ठा युक्त व्यक्ति ही लघु हैं। भगवद्विस्मृति की कोई न कोई विचित्रतामें अर्थात् अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान (निर्विशेष), अष्टाङ्ग योगादिमें किसी न किसी ध्रुव व्यापारमें जो आवद्ध हुए हैं, वे ध्रुवनिष्ठ हैं। कृष्णको जो अच्छा लगे, उसे विचार करना ही उचित है। मुझे अच्छी लगनेवाली वस्तु अन्याभिलाष आदि कृष्णाभिलाष नहीं है। भोगी होने पर सुविधा न होगी एवं अत्यन्त वैरागी होने पर भी सुविधा न होगी।

गाय पवित्र वस्तु है। किन्तु उसके दूध को पवित्र ज्ञान न कर गायको पवित्र कहते-कहते दूध पानके बदले यदि कोई गायको ही खा ले, तो उनका जिस प्रकार पवित्रता ज्ञान में कुविचार उपस्थित होता है, उसी प्रकार 'कृष्ण पवित्र', 'भगवान् पवित्र' मुखमें कहते हुए भगवानकी नित्य पवित्र सेवा करनेके बदले यदि कोई आप ही भगवान होना चाहे, भगवानको यदि ग्रास करना चाहें, तो उनके ज्ञानकी अतिव्याप्ति (आवश्यकतासे अधिकता)

होकर मूर्खता एवं अपराधका कारण बनता है।

परमात्मा कृष्णके आंशिक वैभव हैं। विभूताको घटाकर कृष्ण अविचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे माध्यमिकता प्राप्त करते हैं। 'श्रीहरि सेवाय जाहा अनुकूल। विषय बलिया त्यागे हय भूल ॥' भगवानको भोग न देकर कुछ भी ग्रहण नहीं करूंगा'—एसी बुद्धि न होने पर मेरे आहार-विहार आदि कार्य ही सर्वस्व हो पड़ते हैं। जो कुछ पान करेंगे, सब भगवान का पादोदक होगा, जो कुछ ग्रहण करूंगा, सब भगवानका अवशेष है। रजस्तमोगुणसे उत्पन्न सभी वस्तुएँ नैवेद्य नहीं हैं। विशुद्ध सत्त्व भगवान ग्रहण करते हैं। उनका उच्छिष्ट ही हमारे लिए ग्रहणीय है। विष्टा-मूत्र ग्रहणीय नहीं है, वह दुःसंग ज्ञानसे वर्जन करने योग्य है।

अर्वाचीन सम्प्रदाय भगवद्भक्तिकी आलोचनाको कई समय एकतरफा समझते हैं, वास्तव सत्यकी बातको एक दलविशेषकी बात समझते हैं। जगतमें जितने प्रकारके धर्म-सम्प्रदाय होंगे या हो चुके हैं, सभी बातोंका तुलनामूलक विचार श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीमें ही वर्तमान है। श्रीचैतन्यचन्द्रकी इस दयाकी बात प्राकृत सहजिया व्यक्ति आलोचना न करनेके कारण वे Emotional (कोरे भावुक) हो पड़े हैं।

अप्राकृत शब्द (Transcendental Sound) की बात सुननेसे ही जगतका मंगल होगा। वह पूर्वचिन्ता राशिकी, जागतिक ज्ञान से पूर्ण प्राकृत मस्तिष्कको नियमित करेगी।

अप्राकृत शब्दके निकट यथार्थ रूपसे गमन करना होगा। उनकी प्रतिद्वन्द्विता करने पर बंचित होकर लौट आना पड़ेगा। बहुतसे व्यक्ति भागवत सुननेके पश्चात् दूसरे कार्यमें चले जाते हैं। कोई कोई व्यक्ति भोग बुद्धिसे भागवत पाठ करनेका अभिनय करते हैं, ऐसा सुना जाता है। ये सब भागवत पाठ नहीं, भाषाका अभिनय मात्र है। इनमें कोई भी भागवत-पाठ नहीं कर रहा है, नहीं सुन रहा है। श्रीमद्भागवत सुनकर आये, खाना पीना आदि कार्य किया, संसारके कार्यमें व्यस्त हो पड़े—ऐसा होने पर श्रीमद्भागवत-पाठ करना या सुनना नहीं हुआ। श्रीमद्भागवत न सुनने के कारण ही लोगोंके अनर्थ दूर नहीं हो रहे हैं, भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो रही है। "लोकस्याजानतो विद्वान् चके सात्वत-संहिताम्। यस्यां वै श्रूयमानायां कृष्णे परमे पुरुषे भक्तिरुत्पद्यते पुंसां शोकमोहभयापहा।" शोक, मोह, भयका जिन लोगोंने आश्रय ले रखा है, कृष्णको एक ऐतिहासिक व्यक्ति या रूपके रूपमें जिन्होंने कर रखा है, ऐसे मनुष्योंकी उन सभी धारणाओंको निमूल (dismantle) करना ही भागवतका कार्य है। नारदजीने जब कहा कि कृष्णकी एक बात भी महाभारतमें व्यास लिख नहीं पाये, तब नारदजीकी कृपासे ही व्यास पूर्णपुरुष कृष्णको देख पाये। पूर्ण पुरुषके भीतर पीछेकी ओर एक तरफ एक negativity या अचित्शक्ति वास कर रही है। यही माया है। यह मनुष्योंके चेतन धर्मका विनाश कर रही है। भगवानकी

सेवाकी यथार्थता या वास्तविकताकी ओर (Positive phase) जो नहीं दिखला रही है, यह वही शक्ति है। "भगवानका मैं नित्यसेवक हूँ" इस बातको भूल जानेके कारण यह शक्ति इस जगतमें मेरे ऊपर प्रभाव डालनेका अवसर पा रही है।

प्रत्यक्ष ज्ञान केवल childish freaks बच्चोंका खेल है भगवानकी दो प्रकारकी शक्ति है—चिच्छक्ति एवं अचिच्छक्ति। प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा जो माप लिया जा सकता है, या जिसका अनुमान कर ले सकते हैं, वही अचिच्छक्ति है। जब तक 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं भगवानका अंश हूँ—यह बुद्धि नहीं होती, तब तक मायाके द्वारा आक्रांत होना पड़ेगा। इस जगतमें किसी एकवस्तुके प्रति बृहत् ज्ञान या जड़के सम्बन्धमें जड़निषेध करनेवाली किमी धारणाको बृहन्मात्र बुद्धि यदि हो, तो मैं 'ब्रह्मास्मि' नहीं हुआ। इस लिए श्रीमन्महाप्रभुजीने कहा—'तृणादपि सुनीचता' ही 'ब्रह्मास्मि' वाक्यका यथार्थ अर्थ है। जड़का ब्रह्म हो जाना या जड़से श्रेष्ठ हो जाना यथार्थ बृहत्त्व नहीं है। तृणादपि सुनीच वाक्यमें जड़की सवपेक्षा लघु जो तृण है, जिसे गो-गर्दभादि नीच प्राणी भी पददलित कर चले जाते हैं। इस प्रकारके तृणसे भी सुनीच अवस्था ही यथार्थ 'ब्रह्मास्मि' का तात्पर्य है। 'ब्रह्मज्ञ' शब्दसे ब्राह्मण है, कृपण नहीं।

'मैं स्वतन्त्र जीव हूँ', 'भगवानकी सेवा नहीं करूँगा', ऐसी दुबुद्धि प्रत्येक कृपण-

विस्मृत जीवमें ही है। एवं इसी कारणसे वे इस बहिर्मुखताके राज्यमें इस प्रकार प्रवेश किये हैं। असत्यवस्तुको हम सत्यवस्तुके रूपमें स्वीकार करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। हम माया का आदेश पालन करनेकी चेष्टा करते हैं। यदि जीवकी किसी प्रकारसे सुकृति हो जाये, तब ही मज्जल हो पाता है।

क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र— इनके अधीनमें हीन जातिके व्यक्ति कार्य करते हैं। किन्तु ब्राह्मण लोग समालके सभी व्यक्तियोंके मस्तिष्क स्वरूप होकर बुद्धि द्वारा इनकी परिचालना करते हैं। भुजबलसे मदमत्त जाति (क्षत्रिय) लोगोंने यह विचार किया कि वे ब्राह्मणों द्वारा guided (परिचालित) न होंगे, तब वे ब्राह्मण विरोधी हो पड़े—मस्तकके साथ हाथका झगड़ा आरम्भ हो पड़ा—ब्राह्मणविद्वेष आरम्भ हो गया। तब इसी प्रकारकी राजनीतिने ब्रह्मण्य-धर्मका विरोध किया था। बौद्ध-धर्म क्षत्रिय-जातिमें उत्पन्न हुआ था। बौद्धोंने ऋषि नीतिके परित्याग कर संसार नीतिके अभ्युदयके लिए राजनीतिका अवलम्बन किया था। अतएव श्रुति-विरोधी बौद्धधर्म की सृष्टि हुई थी। वैश्यनीति तब जैन-धर्ममें प्रकाशित हुई। उपनिषद्के धर्म या वेदके धर्म से विच्छिन्न होने पर पुतली प्रस्तुतकारी (Iconographer) या पुतली भग्न करनेवाले (Iconoclast) होना होगा। ठाकुर-तोड़ने या ठाकुर तैयार करने, वीर-पूजा, नायक पूजादि करनेके नामसे जड़की मूर्ति प्रस्तुत करने या तोड़ डालनेका चिन्तास्रोत बौद्ध एवं जैन-धर्ममें

प्रकाशित हुआ था ।

श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बार्क, श्रीरामानुज एवं श्रीमध्व—इन चारों आचार्यों ने आविर्भूत होकर इन सभी श्रुतिविरोधी मतवादों का खण्डन किया था । बाहरी जगत्के विन्ता-स्रोतमें जिनका चित्त आबद्ध हो जाय, वे परमार्थसे वञ्चित हो जाते हैं । श्रीमद्भागवत ही ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य है । इस बातको जो व्यक्ति नहीं समझकर अपने मस्तिष्क द्वारा कल्पित मतको ही उदार मत एवं अकृत्रिम सूत्रार्थको साम्प्रदायिक एकतरफा विचार समझते हैं, वे अपना मस्तिष्क आप ही खाते हैं ।

Deductive एवं Inductive—इन दोनों शब्दों द्वारा जड़जगत्के व्यक्ति जो समझते हैं हम बेसा नहीं समझते । हम यह जानते हैं कि जो साक्षात् भगवत्सेवा है वही अवरोहवाद (deductive process) है । जिस किसी प्रकार की अभक्ति क्यों न हो, उसका खण्डन करना ही होगा । किसी भी प्रकारसे उसे भक्तिके साथ समान आसन न देना होगा । जिनमें ऐसी वृत्ति नहीं है अर्थात् अभक्तिके प्रति जिनकी किसी न किसी प्रकारकी गुप्त या व्याप्त आसक्ति या पक्षपातिता है, ऐसे व्यक्तिको जगत्का बंचक या हिंसक जानना होगा । मनुष्योंकी मानसिक कल्पना या चेष्टा (mental speculation) से जितने प्रकारके मत उत्पन्न हुए हैं, उन्हें बदल कर सत्यकी प्रतिष्ठा करने का भार श्रीगौड़ीय वैष्णवोंने ले रक्खा है । श्रील पाधवेन्द्रपुरीपादने यह कार्य आरम्भ किया था । भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेवने इसका प्रचुर

विस्तार किया था । उनके पार्षदोंने उसे पल्लवित किया था । किन्तु मूर्खोंकी संख्या अधिक होनेके कारण वैष्णव-धर्म लोप होनेका उपक्रम हो गया है । यह वैष्णव-धर्म अच्छे व्यक्तियोंके हृदयमें आविर्भूत हों । प्रत्यक्षवादियोंकी दुर्बुद्धिका विनाश हो । किस प्रकार मनुष्योंका कल्याण होगा, किस प्रकार उनके कानोंमें अरुण्ट सत्यकी बात प्रवेश करे, इसके लिए भगवद्भक्त लोग दिन-रात उपाय की चिन्ता कर रहे हैं । उनके लिए और कोई कार्य नहीं है । निर्बोध व्यक्तियोंने श्रीमद्भागवतकी आलोचना बन्द कर दिया है । श्रीगौड़ीय मठके व्यक्ति छोटसे गिलहरी की तरह इनके पुनरुद्धारकी चेष्टा कर रहे हैं । श्रीराधा गोविन्दकी सेवाके द्वारा ही जीवोंकी एकमात्र मुक्ति होगी । मुक्तिके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है । अविमृष्यकारिता या hasty conclusion (हठकारिता या अविवेकितता) के द्वारा किसी प्रकारका मंगल न होगा । छूटकर भाग जाने पर सत्य तथा श्रवणसे वञ्चित होना पड़ेगा । हमारा मन्दिर मिट्टीका मन्दिर या पत्थरका मन्दिर नहीं है । हम पुतली प्रस्तुत करनेवाले या पुतली-भंग करनेवाले व्यक्तिविशेष नहीं हैं । हम ऐसी श्रेणीके व्यक्तियोंको कदापि प्रश्रय नहीं देते । नास्तिक सम्प्रदायके व्यक्ति या अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी योगी लोग ऐसा सोच सकते हैं कि श्रीगौड़ीय मठका मन्दिर भी उनके अड़डेकी तरह एक अड़डाविशेष है । किन्तु उनका ऐसा सोचना ठीक नहीं है । ऐसा सोचनेवाले वे व्यक्ति पुतली-गठनकारी या पुतली-भंग करने वाले व्यक्ति होते हैं । हम किसी काल्पनिक

वस्तुके उपासक नहीं हैं या जो वस्तु अभी है, अन्तमें नहीं रहेगी, ऐसी अनित्य वस्तुके भी सेवक हम नहीं हैं। कर्मी, ज्ञानी—इन दोनों का ही उपास्य वस्तु अनित्य है। कर्मी जिन स्वर्गादि फलोंकी उपासना करते हैं, वे अनित्य हैं। ज्ञानी जिस व्यवहारिकताकी उपासना करते हैं, वह भी उनकी ही बातोंके अनुसार अनित्य है।

आजकल सभी लोगोंके मन्दिर-प्रवेशको लेकर नाना प्रकारके मनोधर्मयुक्त आन्दोलन चल रहे हैं। योग्य व्यक्तिके अधिकारको कोई छीन नहीं सकता और अयोग्य व्यक्तिको भी शरीरके बलसे अधिकार नहीं दिया जा सकता। श्रीवृन्दावनके श्रीवनमाली गोस्वामी ने कहा था कि सेठके मन्दिरमें आचारवान् व्यक्तिको प्रवेश करने देते थे एवं आचारहीन को प्रवेश करने नहीं देते थे। साधारण रूपसे ब्राह्मणोंका आचरण ही सदाचार है।

जिन सभी व्यक्तियोंको प्रवेशाधिकार दिया गया है, उसके बारेमें प्रचुर शास्त्रीय प्रमाण वर्त्तमान हैं। मोची जातिके एक व्यक्ति ने वैष्णव-धर्म ग्रहण किया था। सेठके मन्दिर में उसे प्रवेशाधिकार न देनेके कारण वह प्राण त्याग संकल्प कर मन्दिरके द्वारमें अपना सिर कूट रहा था। उसमें लक्ष्मीचन्द सेठ वर्त्तमान थे। उन्होंने इस बातका संवाद पाकर कहा— “क्या मैंने ठाकुर मन्दिर मनुष्य मारनेके लिए बना रखा है? देश-भेदसे स्मृति-विधान भिन्न-भिन्न है। जब वैष्णव हो गया है, तब वैष्णव का जाति-विचार करना उचित नहीं है।”

दक्षिण देशमें ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर विचार प्रबल है।

ये सभी जागतिक विचार देह और मन की मत्सरतासे उत्पन्न हैं। भगवद्भक्ति आत्मा की वृत्ति है। उसमें ऐसा विचार नहीं है। मनुष्यमात्रका ही भक्तिमें अधिकार है। मनुष्य मात्र का कर्म एवं ज्ञानमें अधिकार नहीं भी हो सकता है।

वर्त्तमान समयमें अवैष्णवोंकी संख्या अधिक होनेके कारण अवैष्णव धर्म ही हिन्दू-धर्मके रूपमें प्रचार किया जा रहा है। वैष्णव स्मृतिके साथ प्रतियोगिता करनेके लिए रघुनन्दन भट्टाचार्यने अवैष्णवोंके जिन सभी स्मृति-विधानोंका राजस एवं तामस शास्त्रोंसे संकलन किया था, उसे ही आजकल बङ्गदेशवासी व्यक्ति हिन्दू धर्मकी विधि मान बैठे हैं। साधारण लोग अधिक संख्यक व्यक्तियों के मतको ही सत्य समझते हैं। किन्तु सत्य इससे मापा नहीं जा सकता।

‘हरिजन’ एवं ‘प्रकृतिजन’ भिन्न-भिन्न हैं। ‘हरिजन’ शब्द वैष्णवकी परिभाषा है। जोब मात्र ही स्वस्वातः वैष्णव या हरिजन होने पर भी जब उसमें प्रकृति-वश्यता देखी जाती है, तब उसका हरिजनत्व अप्रकाशित है।

William Pitt एवं Chatham Pitt एक परिवारमें दो व्यक्ति प्रधान मंत्री होने पर भी उस वंशके सभी व्यक्ति ही प्रधान मंत्री बनेंगे, ऐसी बात नहीं है। डाक्टरका लड़का ही सब समय डाक्टर नहीं होगा।

इन सभी विष्णुविरोधी चेष्टाओंके बारेमें क्या कहें ?— कर्मफलके अधीन मनुष्यके जन्म-दिनको स्वयंरूप कृष्णकी जन्म-तिथिके अनुकरणमें 'जयन्ती' कहा जा रहा है ! भगवान्की सेवाके प्रति जिनकी चेतन वृत्ति जागरित हुई है, वे ही 'हरिजन' हैं। उनके नामका अनुकरण कर अस्पृश्य जातिके व्यक्तियोंको 'हरिजन' दरिद्र व्यक्तियोंको 'नारायण' कहनेका कुमत् सर्वत्र प्रचारित हो रहा है ! यदि अस्पृश्य व्यक्ति ही 'हरिजन' हुए एवं दरिद्र व्यक्ति 'नारायण' हुए, तो क्या हरिविरोधी व्यक्ति ही श्रेष्ठता प्राप्त कर लिए हैं ? तब यह साक्षात् कलिका विचार है ।

जो व्यक्ति दीक्षित हुआ है, वह ठाकुर की सेवा करेगा, ठाकुरजीके गर्भ मन्दिरमें प्रवेश करेगा। क्या ठाकुरजीका जनेऊ चोरी करनेके लिए ठाकुरजीके गर्भ-मन्दिरमें घुसने दिया जायगा ? जो व्यक्ति ठाकुरजीके भोगके

पहले ही नैवेद्य खा लेना चाहे, ऐसे व्यक्तिको क्या ठाकुर घरमें घुसने देना उधारता है ? Common mob (साधारण नीच प्रकृतिके मनुष्यसमूह) को किसने दिव्य ज्ञान दिया है ? लकड़हारा यदि कुल्हाड़ी लेकर मन्दिरमें प्रवेश करे एवं उस कुल्हाड़ीसे ठाकुरजीको खण्ड-खण्ड करनेकी बात कहे, तो ऐसे व्यक्तिको ठाकुरजी मन्दिरमें कैसे प्रवेश करनेका अधिकार दिया जायगा ? तथाकथित परमहंसने चूहेको शिवजीके दीएका वर्ती चोरी करते देखकर शिवपूजा छोड़ दी। हम माध्व-वैष्णव हैं, हम माध्वगोड़ीय हैं। माध्व वैष्णवोंका कहना है कि दूसरे सभी देवता भगवान् विष्णुके समाननहीं हैं। शंकराचार्यके विचारको कर्मजड़ स्मात् व्यक्ति ही ग्रहण करते हैं। वैष्णवोंकी स्मृति इससे सम्पूर्ण स्वतन्त्र है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद

श्रील सरस्वती ठाकुर

भगवान श्रीकृष्णका बड़प्पन

बामुदेवकी बड़ी बड़ाई।

जगत-पिता, जगदीश, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई ॥

भृगु को चरन राखि उर ऊर, बोले वचन सकल-सुखदाई ।

सिव-विरश्चि मारन कौ धाए, यह गति काहू देव न पाई ॥

बिनु बदले उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई ।

रावन अरि को अनुज विभीषण; ता कौ मिले भरतकी नाई ॥

बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई ।

बिनु दीन्हें ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाई ॥

प्रश्नोत्तर

(पंच-संस्कार)

१- ताप-संस्कारकी साधकता क्या है ?

“ताप-प्राप्त जीव गुरुदेवके द्वारा परीक्षा करते समय अधिकतर ताप प्राप्त होते हैं। ताप पूर्ण होने पर गुरुदेव उन्हें विष्णुचक्रादि ताप द्वारा अस्त्रित करते हैं एवं शरीरके रहते समय तक उन चिह्नोंको धारण करनेका विधान करते हैं।”

‘पञ्चसंस्कार’ स० तो० २।१

२- याग या पूजाविधिका उद्देश्य क्या है ?

“दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आघ्राण, आस्वादन, मनन, विवेचन और क्रिया—इन सभी कार्योंद्वारा परमार्थ अनुशीलन करनेके लिए जिस देवपूजा-पद्धतिका विधान है, उसी का नाम याग है। शालग्राम-पूजामें ये सभी कार्य परमार्थकार्यमें नियोग किये गये हैं। श्रीविग्रहसेवा-पद्धति ही ‘वैष्णव-याग’ है। संसारमें वर्तमान रहना ही होगा, साथ ही साथ कार्य न करनेसे देह-रक्षाका निर्वाह न होगा। अतएव भक्तिपूर्वक समस्त कार्य अर्चनविधि द्वारा भगवानके लिए अर्पण कर समस्त जीवन व्यतीत करना ही मन्त्रोपदिष्ट जीवका कर्तव्य कार्य है। इस यागविधिका उपदेश कर करुणामय गुरुदेव शिष्यका संसार-सागरसे भली प्रकारसे उद्धार करते हैं।”

—‘पञ्चसंस्कार’, स० तो० २।१

३- उद्ध्वपुण्ड्र धारण करनेकी आवश्यकता क्यों है ?

“उद्ध्वपुण्ड्रका दूसरा नाम उद्ध्वगति है। तप्त होकर जीव संसारसे उचित वैराग्य स्वीकार करते हैं। किन्तु जब तक उद्ध्वपुण्ड्र ग्रहण न करें, तब तक तापका फल नहीं होता। इतना क्लेश, इतना वैराग्य, इतना स्वसुखत्याग, इतना शत्रु द्वारा उत्पीड़न आदि कार्य केवल पशुश्रम हो जाते हैं, यदि उसके पश्चात् कोई उच्चगति स्वीकार न की जाय। हरिमन्दिर अर्थात् वैकुण्ठ या हरिपादपथ अर्थात् सच्चिदानन्द वस्तु भगवानके आश्रम ग्रहण करना ही उद्ध्वगति है। वह आत्मा, मन एवं देहमें प्रकाशित होकर उद्ध्वपुण्ड्र होता है। संसारसे विरक्त होकर परमेश्वरके प्रति अनुरक्त होनेका नाम ही ‘ताप और पुण्ड्र’ है। बद्धजीवके लिए ये दोनों अलंकार अत्यन्त आवश्यक हैं। उद्ध्वपुण्ड्र रहित शरीर शवके समान है। उसे देखने पर अनुतापके द्वारा पवित्र होना कर्तव्य है। उद्ध्वपुण्ड्र शून्य मन केवलमात्र क्षुद्र विषयोंमें विचरण करता है, क्षुद्र विषयोंमें आसक्ति करता है एवं क्षुद्र-क्षुद्र विषयोंकी आलोचना करता है। देरी न कर शरीर, मन एवं आत्मामें उद्ध्वपुण्ड्र धारण करते हुए परम वैष्णव धामकी ओर अभिमुख होना चाहिए। उद्ध्वपुण्ड्र आत्माके स्वरूपमें

लिप्त होकर रहता है। अतएव उद्ध्वपुंड्र धारण करना आवश्यक है।”

—‘पञ्चसंस्कार’ स० तो० २।१

४- श्रीमन्महाप्रभुजीने दीक्षा-ग्रहण लीला द्वारा क्या शिक्षा दी है ?

श्रीमाध्वसाम्प्रदायि-परिव्राजक चूड़ामणि-श्रीमदीश्वरीपुरीसकाशात् दीक्षाग्रहणेन जीवानां साधुगुरुरपदाश्रयरूपं कर्त्तव्यं शिक्षायामास।”

श्रीशि०, स० तो० ८

“अर्थात् श्रीमाध्व गोडीय सम्प्रदायके परिव्राजक चूड़ामणि श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीमद् ईश्वरोपादके निकट दीक्षा ग्रहण कर जीवोंको साधुगुरुरपदाश्रय रूप कर्त्तव्यकी शिक्षा दी है।”

५- दीक्षा-ग्रहण विधि साधारण साधकों के लिए क्या परित्याग करने योग्य है ?

“जड़ भरतादि कुछ लोगोंका दीक्षा-कार्य न होनेके कारण दीक्षा विधिका त्याग करना विषयी लोगोंके लिए कर्त्तव्य नहीं है। जीवों के लिए दीक्षा प्रत्येक जन्ममें ही नित्यविधि है। किसी सिद्ध व्यक्तिके जीवनमें दीक्षा देखी न जाय, तो उन्हें उदाहरण-बनाना उचित

नहीं। क्योंकि किसी विशेष अवस्थामें जिनके लिए ऐसा बन जाय, उसके द्वारा साधारण विधिकी हानि नहीं होती। ध्रुव महाराजने इस पार्थिव शरीरसे ही ध्रुव-लोकमें गमन किया। ऐसा देखकर क्या सभी व्यक्ति ही उस पथकी आशा कर अपना समय बितायेंगे ? जड़देह परित्याग कर चिद्देहसे जीव बंकुण्ठमें गमन करते हैं, यही साधारण विधि है। साधारण विधि ही साधारण व्यक्तियोंके लिए ग्रहण करना ही कर्त्तव्य है। अचिन्त्यशक्ति सम्पन्न भगवान् जब जैसी इच्छा करते हैं, तब वही होती है। इसलिए साधारण विधिका उल्लंघन करना हमारे लिए कदापि उचित नहीं है।”

—‘तत्तत्कर्मप्रवर्तन’ स० तो० १।६

६- श्रीगुरुदेव किस समय शिष्यको भक्तिसूचक नाम प्रदान करते हैं ?

“जिस समय श्रीगुरुदेव शिष्यको दीक्षा प्रदान करते हैं, उस समय ही वे कृपा कर उन्हें एक एक हरिभक्ति-सम्बन्ध सूचक नाम प्रदान किया करते हैं।”

—‘पञ्चसंस्कार’, स० तो० २।१

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

पत्रिकाके पाठकोंसे निवेदन

सम्पूर्णतया आप सज्जनोंकी हार्दिक सहानुभूतिसे ही ‘श्रीभागवत-पत्रिका’ का प्रकाशन हो रहा है। अतएव जिन सज्जनोंने पत्रिकाकी बकाया भिक्षा अब तक भेजी न हो, वे कुछ दिन पूर्व पत्र द्वारा दिये गए सूचनाके अनुसार बकाया भिक्षा कृपया भेजकर हम दीन-हीन जनोको उत्साहित एवं आनन्दित करें।

निवेदक :

त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त पद्मनाभ (कार्याध्यक्ष)

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-संदर्भ-२६)

श्रीप्रह्लाद महाराज कहते हैं—

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुजता ॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ।
(भा० ७।७।५१,५२)

अर्थात् हे असुरबालकों ! ब्राह्मणत्व, देवत्व, ऋषित्व, सद्बृत्ति बहुत शास्त्रोंका ज्ञान दान, तपस्या, यज्ञ, शौच (पवित्रता), व्रत आदि भगवानकी प्रीति उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। किन्तु केवल निर्मल या अमल भक्ति द्वारा ही वे प्रीति प्राप्त करते हैं, और सभी केवल विडम्बना मात्र हैं।

‘अमल’ कहनेसे निष्काम भक्तिको जानना चाहिए। विडम्बन कहनेसे नटन या अनुकरण मात्र जानना चाहिए। इसलिए सकाम भक्त द्वारा आश्रित भक्तिको भी केवलमात्र अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिए किया गया भक्तिका अनुकरणमात्र कहना होगा। जिस प्रकार नाटकमें नट लोग रामचन्द्रादि चरित्रसे भिन्न होनेपर उनका अनुकरण किया करते हैं, यहाँ भी ऐसा ही जानना होगा। भक्तिके विषयमें सकामत्व दो प्रकारसे है—(१) ऐहिक और (२) पारत्रिक (स्वर्ग आदि उद्धवलोक सम्बन्धी)।

“हम स्वर्ग, समस्त भूमण्डलका आधिपत्य, ब्रह्माकी पदवी आदि कोई भी वस्तु नहीं चाहती” नागपत्नियोंके इस वाक्यमें सब प्रकार के सकामत्वके लिए निषेध या मना किया गया है।

श्रीप्रह्लादजीके वचनोंमें भी देखा जाता है—

मा मां प्रलोभयोत्पत्यासक्तं कामेषु तैर्वरैः ।
तत्सङ्गभीतो निर्विघ्नो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥
(भा० ७।१०।२)

अर्थात् हे देव ! मैं अपने स्वभावसे ही कामासक्त हूँ, इसलिए इन सभी वरों द्वारा काम-संगसे भय पाकर, निर्वद प्राप्त कर एवं मुमुक्षु होकर (मुक्ति पानेकी इच्छासे) आपका शरणागत हुआ हूँ। ‘यहाँ मुमुक्षा’ कहनेसे कामत्यागकी इच्छाको जानना होगा। क्योंकि इसके पश्चात् कहा गया है—

यदि वास्यसि मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्वभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥
(भा० ७।१०।७)

हे वरदश्रेष्ठ भगवान् ! यदि आप मेरे अभीष्ट वरसमूह प्रदान करने की इच्छा करते हैं, तो आपके निकट मैं यही वर प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हृदयमें किसी प्रकारकी कामनाका

उदय और न हो ।

इसी प्रकार श्रीअम्बरीष महाराजके यज्ञानुष्ठान आदि भी केवलमात्र लोक-शिक्षाके लिए जानना होगा । उन्हें लक्ष्य कर— “वे एकान्त भक्तिभावके साथ” ऐसा वाक्य कहा गया है । भक्ति विषयमें ऐहिक निष्कामत्वके अर्थमें ‘जीविका एवं प्रतिष्ठादि संग्रह-शून्यता’ जानना होगा ।

गरुड़ पुराणमें शुद्ध-भक्ति-लक्षणमें कहा गया है—“विष्णुं यो नोपजीवति” । अर्थात् विष्णुको जो व्यक्ति जीविकाका उपाय स्वरूप नहीं करते ।

श्रीप्रह्लादजीका भी कहना है—

मौनव्रत-श्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-

व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।

प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां

वार्त्ता भवन्त्युत न वात्र तु दांभिकानाम् ॥

(भा० ७.६।४६)

हे अन्तर्यामिन् ! मौन, व्रत, शास्त्र-ज्ञान, तपस्या, अध्ययन, स्वधर्म, व्याख्या, निजंन-वास, समाधि एवं जप—ये दस मोक्षसाधन अजितेन्द्रिय व्यक्तियोंकी वार्त्तास्वरूप हुआ करते हैं । दांभिक व्यक्तियोंके लिए कभी ये सभी जीविकास्वरूप होते हैं और कभी नहीं होते ।

यहाँ ‘वार्त्ता’ कहनेसे ‘जीवनोपाय’ जानना होगा । दांभिक व्यक्तियोंके लिए कभी जीविका स्वरूप होते हैं और नहीं भी होते, क्योंकि दांभिक फल अनिश्चित है । इसलिए

देवराज इंद्रने माता अदितिसे कहा है—

आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ।

ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥

(भा० ६।१८।७४)

जो व्यक्ति निष्काम भावसे भगवान् की उपासनामें प्रवृत्त होनेके पश्चात् मुक्ति तककी कामना नहीं करते, उन्हें ही स्वार्थकुशल रूप से कहा गया है । ‘पर’ कहनेसे ‘मोक्ष’ ।

अतएव भक्ति ही सभी शास्त्रोंमें साररूप से कही गई है—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यात्मनिवेदनम् ॥

इति पुंसापिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।

क्रियते भगवत्याढ्या तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

(भा० ७।१।२३-२४)

भगवानका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन—ये नवलक्षणोंसे युक्त भक्ति यदि किसी व्यक्तिद्वारा भगवानमें अर्पित होकर साक्षात् रूपसे आचरण की जाय, तो उन्होंने ही उत्तम अध्ययन किया है, ऐसा मेरा विचार है । (श्रीप्रह्लादजीके वचन) ।

श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरणको भगवानके नाम रूप-रूप-गुण-लीला आदिके विषयमें जानना होगा । ‘पादसेवन’ कहनेसे परिचर्या, ‘अर्चन’ कहनेसे शास्त्रीय विधिद्वारा पूजा ‘वन्दन’ कहनेसे नमस्कार, दास्य कहनेसे ‘मैं उनका दास हूँ’—ऐसा अभिमान, ‘सख्य’ कहने से उनकी बन्धुभावसे हितकामना एवं

‘आत्मनिवेदन’ कहनेसे बिके हुए गौ-घोड़े आदि की तरह अपने देहादि सब कुछको एकमात्र उनकी ही सेवाके लिए क्रय वस्तुके रूपमें भगवानके लिए अर्पण, इसमें अपने मरण-पोषणके लिए चिन्ता तक नहीं करना पड़ता । प्राचीन महाजनोंकी उक्ति यह है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षितभवद्वयासकिः कीर्त्तने प्रह्लादः स्मरणे तर्वांग्रभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने । अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः सर्वास्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

भगवद् विषयके श्रवणमें श्रीपरीक्षित महाराज, श्रीशुकदेव गोस्वामीजी कीर्त्तनमें, स्मरणमें प्रह्लाद महाराज, पादसेवामें श्रीलक्ष्मी जी, पूजामें श्रीपृथु महाराज, वन्दनमें अक्रूरजी, दास्य (दासता) में श्रीहनुमानजी, सख्यमें श्री अर्जुन एवं आत्मनिवेदनमें बलि महाराज प्रधान साधक थे एवं वस्तुतः इनकी ही श्रीकृष्ण-प्राप्ति हुई थी ।

‘नवलक्षणाभक्ति’ अर्थात् श्रवणादि उक्त नौ प्रकारके लक्षण जिसके है, ऐसी ‘भक्ति’ यदि ‘भगवान्में’ अर्थात् भगवद्विषयमें ‘साक्षात् रूपसे’ अर्थात् कर्मसमर्पणादि परम्पराके बिना ही आचरण की जाय, उसमें भी विशेषकर यदि वह विष्णुके प्रति ही ‘अर्पित होकर’ अर्थात् यह उनके लिए ही है—ऐसी

चिन्ताके साथ की जाय, परन्तु धर्म, अर्थ, काम आदि कामनासे युक्त होकर अर्पण न की जाय—ऐसा होने पर ऐसी भक्तिके अनुष्ठाताने जो कुछ अव्ययन किया है, वही उत्तम अर्थात् सार्थक समझता है ।

श्रीगोपाल-तापनी श्रुतिमें भी कहा गया है—“भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिर्नरास्येनामुस्मिन् मनः कल्पनमेतदेव नैष्कर्म्यम्”। ‘भक्ति’ शब्दका अर्थ उन्हीं भगवानका भजन अर्थात् ऐहिक (सांसारिक) एवं पारत्रिक (स्वर्गादि उर्द्ध्व या अधोलोक सम्बन्धी) धर्म-चिन्ताका परित्याग कर उनमें ही ‘मन’ समर्पण, यही नैष्कर्म्य है । यहाँ नवलक्षण कहनेसे सभी नौ लक्षणोंकी ही समष्टि नहीं, क्योंकि पृथक् रूपसे एक एक अङ्ग द्वारा ही साध्य वस्तु भगवान्के विषयमें निश्चित रूपसे सिद्ध होती है । किसी किसी स्थानमें दूसरे अङ्गोंका मिश्रण केवलमात्र लोगोंकी श्रद्धा एवं रुचिकी भिन्नताके कारण ही देखा जाता है । ‘नवलक्षणा’ शब्द साधारण भक्तिमात्रके ही विदेश होनेके कारण भक्तिमात्र का ही अनुष्ठान बिहित (निश्चित) हुआ है । दूसरे-दूसरे अङ्गसमूहको भी इन नौ अंगोंमें अन्तर्भुक्त कर इसका नवलक्षणत्व सिद्ध होता है ।

—त्रिविण्डस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव
श्रीती महाराज



भक्तिकी बात

स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने प्रयाग-क्षेत्रमें श्रील रूप गोस्वामीपादको जब भक्तिकी बात या भक्तितत्वकी शिक्षा दी थी, उस समय उन्होंने स्थावर-जंगम आदिका विचार न कर एकमात्र जीव-चैतन्यका विचार किया था। नौ लाख प्रकारकी जल-जन्तुएँ, बीस लाख प्रकारके वृक्षादि आच्छादित चेतन जीव, ग्यारह लाख प्रकारके किमि-कीटाणु, दस लाख प्रकारकी पक्षियाँ, तीस लाख प्रकार के पशु एवं चार लाखकी मनुष्य-जाति-कुल सब मिलाकर चौरासी लाख प्रकारके प्राणी-समूहमें मनुष्य-जाति ही अल्प-संख्यायुक्त है। उस अल्प संख्यायुक्त मनुष्य जातिका विश्लेषण करने पर असभ्य, आधे सभ्य एवं सभ्य—इन तीन प्रकार के मनुष्योंका समावेश देखा जाता है। उनमें सभ्य-जातिके रूपमें परिचित बहुतसे मनुष्य लोग सभी प्रकारके नियम तथा अनुष्ठानोंका परित्याग कर जीवनमें तथाकथित स्फूर्ति या आमोद-प्रमोद करनेके उद्देश्यसे प्रायः असभ्य जातिके व्यक्तियोंकी तरह केवलमात्र उच्छृङ्खलताके ही अधीन हैं। इन्द्रियोंको सुख-चेष्टा ही उनका मुख्य उद्देश्य है। इन्द्रियोंकी सेवा एवं उन्हें सतेज कर खूब कार्य समर्थ रखना ही उनका एकमात्र लक्ष्य है। और क्या कहा जाय, अस्सी वर्षके वृद्ध व्यक्ति भी इन्द्रियोंको सतेज रखनेके लिए आधुनिक चिकित्साके अनुसार बन्दरकी शिराविशेष या

विशेष नसको अपने शरीरमें लगाकर फिरसे यौवनको पानेके लिए चेष्टा कर रहे हैं। इस प्रकारसे इन्द्रिय-तृप्तिकारी मनुष्य-समाज यह नहीं जानता कि इन्द्रियकी अपेक्षा भी बहुत श्रेष्ठ मन, मनकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ बुद्धि एवं बुद्धिसे भी ऊपर बहुत गुणोंमें श्रेष्ठ जो शूद्र अहङ्कार है, वही आत्माका आवरण है। इस प्रकारके आत्माका अनुसंधान करनेमें केवल उच्छृङ्खल इन्द्रिय-तृप्ति करनेवाले व्यक्ति लोग सब समय ही पीछे रह जायेंगे। केवल इन्द्रिय-तृप्ति करनेवाले व्यक्ति लोग पशु-जातिमें ही गिने जायेंगे—क्योंकि मनुष्य-जातिके लिए इन्द्रिय-तृप्तिको छोड़कर और भी बहुत श्रेष्ठ गुरुतर कार्य है, जिस कारणसे वह उसे सभी जातियोंमें श्रेष्ठ कहा जाता है। इसलिए कुछ-कुछ व्यक्ति जीवनका गुरुत्व जानकर उच्छृङ्खलताको स्थान न देकर महाजनों द्वारा दिखलाये गये नियमानुसार जीवन बिताते हुए जीवनके प्रधान उद्देश्यको पूरा करनेके लिए दृढ़ संकल्प ग्रहण करते हैं। हिन्दू, मुसलमान पारसी, ईसाई आदि जो व्यक्ति जहाँ तक भगवद्-विश्वास प्राप्त हैं, उसीके अनुसार वे सभी व्यक्ति ही देश, काल, पात्र विशेषके द्वारा अपने अपने नियम पालन करते हैं। ऐसे भगवद्-विश्वासी, नियम पालनकारी व्यक्तियोंको लक्ष्य कर भगवान् श्रीकृष्णने महान वीर अर्जुनसे कहा था—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धाणां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥
(गीता ७।३)

जीव चैतन्य अनादिकालसे बहुत सी दूसरी योनियोंमें भ्रमण करते करते अपने कर्मानुसार क्रम-विकाश पथमें बहुतसे जन्मोंके पश्चात् एवं बहुत भाग्यसे यह मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। मनुष्येतर कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदिके शरीरमें जीवकी चेतनता आच्छादित रहनेके कारण उन प्राणियोंमें इंद्रिय-धर्म ही प्रबल है। मनुष्य-जीवनमें भी कुछ व्यक्ति इंद्रिय-धर्मसे कुछ दूर रहकर जगतमें महापुरुष, योगी, ज्ञानी, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदिके रूपमें परिचय पाकर इन्द्रियों से श्रेष्ठ जो मन है, उस मनोधर्ममें या उससे भी श्रेष्ठ जो बुद्धि है, उस बुद्धिके धर्ममें नियुक्त होते हैं। बुद्धिकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ जो जीव-चैतन्य है, उस चैतन्य धर्ममें नियुक्त होनेका नाम ही चेतन-धर्म या सनातन-धर्म या जैव-धर्म है।

चेतन धर्मको छोड़कर छल-धर्म या उसके अनुयायी जो सभी धर्म हैं, उनमें पशु-धर्ममें प्राथमिक प्रयोजन रूप आहार, बिहार, निद्रा, भय, संयुनादि कार्य ही तर-तमके हिसाबसे देखे जाते हैं। मनुष्येतर जीवमें चेतन धर्मके विकाशकी संभावना प्रायः बिलकुल ही नहीं है। किन्तु मनुष्य जीवनमें उस चेतन-धर्मके विकाशकी संभावना होनेके कारण हजारों व्यक्तियोंमें कोई कोई व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। मनुष्य-

जीवनमें ही ये तीन प्रश्न उठ सकते हैं— (१) मैं कौन हूँ ? (२) त्रितापद्वारा मैं क्यों कष्ट पा रहा हूँ एवं (३) मेरा कल्याण कैसे हो ?

मनुष्य जीवनमें ही नित्य सुखका अनुपन्धान आरम्भ होता है एवं उस शरीरमें ही यह अनुभव होता है कि मैं दुःख नहीं चाहता, तथापि मेरे कन्धेके ऊपर दुःख आकर चढ़ता है; मैं मृत्यु नहीं चाहता, तथापि मृत्यु मुझे जर्बदस्ती ले जाती है; मैं बुढ़ापा नहीं चाहता, तथापि यौवन कालके तुरन्त पश्चात् ही मुझे बुढ़ापा आकर घेर लेती है। मैं रोग-शोकसे मुक्त रहनेकी जितनी भी चेष्टा क्यों न करूँ, वे मुझे छोड़ नहीं देते। अधिकांश बुद्ध व्यक्ति ही ये सभी दुःख-दैन्य रहने पर भी मनुष्य जीवनको सुखमय बनानेके लिए अथवा प्रयास करते हैं। किन्तु जो लोग बुद्धिमान व्यक्ति हैं, वे लोग स्थिरचित्तसे इस विषय पर चिन्ता करते हैं कि किस प्रकार इन सभी दुःखों से परित्राण पाया जा सकता है एवं ऐसा करनेके लिए कोई उत्तम उपाय है या नहीं ? इस प्रकारके सत्य नुसन्धानके प्रबल हो पर ही 'ब्रह्म-जिज्ञासा' उपस्थित होती है एवं वे सभी ब्रह्म-जिज्ञासु व्यक्ति लोग ही सिद्धि-प्राप्ति के पथिक हैं। जो व्यक्ति यथार्थ ज्ञानी हैं, वे लोग ही पहले-पहले जन्मोंकी सुकृतिके बल पर ब्रह्म-जिज्ञासु होकर सर्वदा ही जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधिके दुःखोंको साम्ने रखकर कार्य करते हैं।

उन सभी दूरदर्शी सिद्धिके इच्छुक व्यक्तियोंमें सबसे नीचेकी श्रेणीमें कर्मी है। इस कर्मी-सम्प्रदायके व्यक्ति लोग भोगी या

इन्द्रिय-धर्मों हैं। इनकी अपेक्षा और भी उन्नत स्तरमें अवस्थित व्यक्ति लोग इन्द्रियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ मन का आश्रय कर ज्ञानोके रूपमें अपना परिचय प्रदान करते हैं। उसकी (मनकी) अपेक्षा भी श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर जो व्यक्ति सिद्धि पानेके लिए चेष्टा करते हैं, वे लोग योगी या तीसरी श्रेणीके सिद्धिकामी हैं। इन्हें अशान्त भुक्ति, मुक्ति, सिद्धिकामी कहकर श्रीश्रीमन्महाप्रभुजीने पुकारा है। इन सभी व्यक्तियोंमें जो व्यक्ति जड़ाभिमानका त्यागकर मुक्त हुए हैं एवं शरीर, मन, बुद्धि, जड़-अहङ्कार आदिका परित्याग कर आत्म-धर्ममें प्रतिष्ठित हुए हैं, एकमात्र वे लोग ही भगवान् श्रीकृष्णको तत्त्वतः समझ या जान सकते हैं। वे सभी कृष्णतत्त्वविद् व्यक्ति लोग जिस किसी अवस्थामें क्यों न रहें, वे ही जगद्गुरु हैं। अतएव श्रीचैतन्य-चरितामृतमें (मध्य ८।१२७ में) कहा गया है—

किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय ।
जेइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय ॥

अतएव साधारण कर्मों या ज्ञानी व्यक्ति कृष्ण-तत्त्व नहीं जानते, भक्तितत्त्व या भक्तिकी बात भी नहीं समझते। ये सभी मूढ़ कर्मों व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्णको साधारण मनुष्य समझकर उनकी अवज्ञा करते हुए श्रीमद्गीता का विपरीत अर्थ किया करते हैं।

कलिकालमें नष्ट-ज्ञान-मनुष्य लोग सभी विषयोंमें ही दीन-दरिद्र होकर पशु-जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताएँ—आहार-निद्रा-भय-मंथन आदिमें ही सभी समयका नाश कर,

मुक्तावस्थामें कृष्ण-तत्त्व जानना तो दूर रहे, भली प्रकारसे कर्म-ज्ञानकी चर्चा करनेका समय भी नहीं पाते। शास्त्रमें निर्दिष्ट कर्म-ज्ञान द्वारा जिस चित्त-शुद्धिकी व्यवस्था है, उसके द्वारा कृष्ण-तत्त्व कुछ कुछ समझनेकी शक्ति मिलती है। ज्ञानकी आखिरी बात—ब्रह्म-भूत अवस्था प्राप्त होने पर उसके पश्चात् कृष्ण-भक्ति प्राप्त करनेकी अवस्थामें उन्नति होती है। उस प्रकारकी ब्रह्मभूत अवस्था प्राप्त करनेका सुयोग कलिके द्वारा आक्रान्त जीवोंमें पूर्णतया न होनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपना तत्त्व पूरी तरहसे श्रीभगवद्गीतामें बतलाया है। दुर्भागि व्यक्ति लोग उसमें भी भूल कर बैठेंगे, ऐसा सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण ने भक्तरूपसे, प्रेमके अवतार परम दयालु गौरचन्द्रके रूपमें जीवोंको गीताकी बातोंको आदर्श रूपसे समझाया है। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—“मैं ही सब कुछ हूँ” एवं उस बातका शृगाल-वासुदेव जैसे व्यक्ति कदर्थ करेंगे ऐसा सोचकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपसे कहा—“श्रीकृष्ण ही सब कुछ हैं।” दोनों बातोंमें कोई भेद नहीं है। लक्ष्य वस्तु एक ही है। साधारण भाषामें एक कहावत है—‘बन्दरके गलेमें मोतीकी माला’। हम जैसे कलिहत जीव उसी प्रकारके बन्दर जैसे हैं। हम पर कृपा कर ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ वस्तु कृष्णतत्त्व—भक्तितत्त्व अति सहज रूपमें दिया गया है। अतएव हमने भक्तितत्त्व का यथेष्ट कदर्थ कर डाला है। यही हमारे दुर्भाग्यकी बात है। जिस निम्नस्थ इन्द्रिय-धर्म से परित्राण कर आत्म-धर्ममें स्थापित करनेके

लिए स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने दो बार चेष्टा की है, हमने अपने दुर्भाग्यके कारण उस आत्मधर्म की बातोंको भी फिरसे इन्द्रिय-धर्ममें बदल डाला है।

अल्पबुद्धि शिशुके निकट जिस प्रकार एक रंगीन पुतली एवं एक स्वच्छ हीरेका टुकड़ा उपस्थित करने पर शिशु जिस प्रकार हीरेके टुकड़ेको छोड़कर काँचको पुतलीको ही लेता है, ठीक उसी प्रकार कलिहृत अल्प बुद्धि मनुष्य जोगोंने स्वच्छ हीरेका टुकड़ा जो भक्ति-कथा या श्रीकृष्ण है, उनका अनादर कर रंगीन काँचका टुकड़ा, जो कर्म एवं शुष्क ज्ञान है, उसे ही ग्रहण किया है। अल्पबुद्धि वाला शिशु जिस प्रकार यह समझ नहीं सकता कि हीरेके टुकड़ेमें लाखों रंगीन पुतलियाँ हैं, उसी प्रकार अल्पबुद्धि वाले व्यक्ति यह नहीं समझते कि कृष्णकी भक्ति करने पर सब कार्य करना हो जाता है।

जो व्यक्ति कृष्ण-तत्व या भक्ति-तत्व को समझते हैं, वे लोग कर्म, ज्ञान, योग, दान, तप, जप आदि सभी तत्व ही अपने आप जान लेते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान्ने श्रीउद्धवजी से कहा है—

यत् कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितैररपि ॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽङ्गसा ।
(भा० ११।२०।३२-३३)

कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म या दूसरे-दूसरे श्रेयः के साधनों द्वारा जगतमें जो कुछ भी प्राप्त होते हैं, उन सब कुछको मेरे भक्त अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं।

निरीश्वरवादी कपिलने जिस सांख्य दर्शनकी सृष्टि की थी, उसमें महत्तत्त्वसे प्राकृतिक भूमि, अप् (जल), आग, वायु, आकाश, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, चक्षु (आँख), कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा, वाक् (वाणी), पाद, पाणि, पायु (मलद्वार), उपस्थ, मन, बुद्धि, अहंकार आदि चौबीस तत्वोंका विचार किया गया है। इन चौबीस तत्वों द्वारा न जानने योग्य अव्यक्त आत्माको न समझ पाकर वे भगवान्के अस्तित्वको स्वीकार करने में असमर्थ रहे। अतएव सात्वत या भगवद् विश्वासी वैष्णव-सम्प्रदायके व्यक्तियोंके निकट वे निरीश्वर कपिल के नामसे प्रसिद्ध हैं।

(कमशः)

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त
स्वामी महाराज

अमूल्य कण्ठध्वनि

[अस्मदीय श्रीश्रीलगुरुपादपद्म परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त कुछ भाषणोंका सार-मर्म]

जीवोंका पारमार्थिक परिचय जागतिक परिचयकी अपेक्षा उन्नत है। यथार्थ

पारमार्थिक दीक्षा प्राप्त करनेपर उनके माता, पिता, भोत्र, ग्राम, समाज, जाति, आत्मीय स्वजन आदि सभी कुछ बदल जाते हैं एवं उनके स्वरूप का परिचय प्रस्फुटित होता है। तब वे स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर भगवानकी सेवामें अधिकार प्राप्त करते हैं।

श्रीमद्भागवतके 'कर्माणि आरभमाणानां' श्लोक का मूल तात्पर्य यह है कि इस मर्त्य जगतमें निरवच्छिन्न या विशुद्ध सुखका अभाव है। मायाका राज्य अभाव द्वारा ही रचित है एवं अभाव ही माया है। इस अभावको दूर करनेके लिए साधुगुरु-पदाश्रय ही एक मात्र उपाय है।

समाजका मूल उद्देश्य हरिभजन है। जिस समाजकी अन्तिम अवस्था या परिणाम नास्तिकता है, ऐसे समाजको सब प्रकारसे तोड़ फेंकना ही हमारा कर्तव्य है। हरिभजन-पिपासुकी सहायता करना समाजके सभी व्यक्तियोंका ही कर्तव्य है। गृहस्थ व्यक्ति सहर्षभिणी, ग्रहण करेंगे, 'कामिनी' ग्रहण करना उचित नहीं, क्योंकि 'कामिनी' हरिभजनमें बाधा उत्पन्न करनेवाली है। जो पुत्र भगवद्भजनमें प्रवृत्तिरहित है, ऐसे पुत्रको ही त्याज्य पुत्र करना आवश्यक है। नास्तिक व्यक्तिकी उपेक्षा एवं समाजसे च्युत करना समाजका कर्तव्य है। प्रत्येक ग्राममें हरिसभा धर्मरक्षिणी-सभा, आदिकी

प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। शिक्षकोंका कर्तव्य है कि वे छात्रोंका पारमार्थिक जीवन गठन करे न कि उसका ध्वंस करें।

परमार्थ जगतमें प्रवेश करनेका प्रधान अवलम्बन कान है। दूसरी-दूसरी इंद्रियोंकी अपेक्षा कानोंको ही शास्त्रकारों ने प्रधानता दी है। परमार्थ-विषयमें कानों द्वारा ही दूसरी-दूसरी इंद्रियोंके कार्यकी परिचालना होती है। आँखों द्वारा दर्शन न कर कानों द्वारा दर्शन करना आवश्यक है। इसलिए श्रीगुरुपादपद्म दूसरी-दूसरी इंद्रियोंको छोड़कर कानोंको ही ग्रहण करते हैं। उसमें वे शब्द-ब्रह्मका प्रवेश कराकर दूसरी-दूसरी इंद्रियोंकी शुद्धि एवं मुष्टता (श्रेष्ठताका सम्पादन कर शिष्यको भगवानका सान्निध्य प्राप्त कराते हैं।

छायाचित्र आदि द्वारा भगवानकी लीलाओं का दर्शन करानेका उद्देश्य इन्द्रिय-तर्पण नहीं है। परन्तु उनके माध्यमसे तत्व विषयोंका श्रवण करते हुए शुद्ध अन्तःकरणसे विचार करना ही है। अभी गौरांग प्रभु लीला की पुनरावृत्ति होते देखकर इसे पुरानी बात नहीं समझेंगे। यह नित्य नवायमान है। वेदान्त-दर्शनका भी कहना है—'आवृत्तिरसकृत् उपदेशात्'। अर्थात् बारम्बार उपदेश किये जाने के कारण बारम्बार श्रवणादि करनेकी आवश्यकता है। यही वेदोंका उपदेश है।

★

★

★

★

★

श्रीशंकराचार्यके एकदण्ड-संन्यासका उद्देश्य जीवकी ब्रह्मके साथ अथवा या अनुचित रूपसे अभेद ज्ञान करना है। किन्तु

वेण्णाव त्रिदण्ड-संन्यासका उद्देश्य—काय (शरीर), मन एवं वाक्य—इन तीनोंको दंडित या नियमित कर हृषीक (इंद्रिय) द्वारा हृषीकेश

(इन्द्रियधिपति) की सेवा करना। जीव और ब्रह्ममें अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध नित्य रहनेके कारण एकदण्ड संन्यास युक्तिविरुद्ध एवं असम्भव है। विशेषकर एकदण्ड संन्यासका कलियुगमें निषेध किया गया है। श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड, (१८५।१८०) में—

अध्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पत्नपतृकम् ।
देवरेण सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥
किन्तु—

इहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा ।
निखिलः स्वव्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥
(नारद-पुराण वचन)

इस श्लोकके अनुसार त्रिदंड-संन्यासका सर्वकालमें एवं सर्वत्र समादर देखा जाता है।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णित "हिन्दूशास्त्रे ईश्वर नाम महामन्त्र जानि । सर्वलोके शुनिले मन्त्रेण वीर्यं ह्यहानि ॥"— यह प्रसङ्ग ईश्वरके नामरूप महामन्त्रके उच्च-कीर्त्तन-विरोधी पाषण्डी हिन्दुओंके द्वारा उत्थापित प्रतिवादकी बात बतलाता है। इस समयमें भी ऐसे पाषण्डी व्यक्तियोंका अभाव नहीं है, परन्तु गुरुके अवज्ञाकारी वैष्णवावापराधी बहुतसे गौड़ीय नामधारी व्यक्तियोंको ऐसे पाषण्डी हिन्दुओंका पदानुसरण करते देखा जा रहा है। ईश्वरके सभी नामों को ही 'महामन्त्र' कहकर शास्त्रोंमें वर्णन नहीं है, परन्तु सोलह नाम बत्तीस अक्षरको ही

'महामन्त्र' कहकर निर्देश किया गया है। स्वाहा, प्रणव एवं चतुर्थी विभक्ति संयुक्त होकर भगवानके कोई कोई नाम मन्त्र कहलाते हैं। किन्तु उन्हें 'महामन्त्र' नहीं कहा गया 'महामन्त्र' कहनेसे 'सोलह नाम बत्तीस अक्षर' को ही समझना चाहिए। इसलिए स्वयं श्रीश्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव अपने पार्षदोंके साथ इस महामन्त्र (हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥) का ही असंख्य बार ऊँचे स्वरसे कीर्त्तन करते थे, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रह सकता। किन्तु अपराध-मलिन नाम-विरोधी पाषण्डी व्यक्ति कदापि यह जाननेमें समर्थ नहीं हो सकते।

“जाह् भागवत पङ्क वैष्णवेर स्थाने ॥
एकान्त आश्रय कर चैतन्य-चरणे ॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके इस वाक्य द्वारा यह जाना जाता है कि सद्गुरु पदाश्रय कर श्री गुरुपादपद्मके निकटसे जिन्होंने श्रीमद्भागवत ग्रन्थका यथार्थ तात्पर्य जान लिया है, वे ही एकमात्र कीर्त्तन या भागवत-पाठ करनेके अधिकारी हैं। संस्कृत विद्या या पांडित्यके द्वारा वह ग्राह्य नहीं है। परन्तु निरक्षर व्यक्ति श्रीगुरुदेवकी कृपाके प्रभाव द्वारा श्रीमद्भागवतका तात्पर्य कीर्त्तन करनेमें सब प्रकारसे योग्य है। इस बातका प्रमाण पूर्व पूर्ववर्ती बहुतसे परममुक्त पुरुषोंके चरित्रमें देखा जाता है।

★ ★ ★
श्रीशंकराचार्यका मत धर्मजगतमें शिशुओंका पाठ्य मत है। जिन्होंने अचिन्त्य-भेदाभेद-

★ ★ ★
सिद्धांतकी भली प्रकारसे आलोचना करनेका सुयोग नहीं पाया है, वे लोग ही श्रीशंकराचार्य

के मत एवं विचारका बहुत आदर करते हैं। यथार्थ रूपमें गौड़ीय वेदान्त अर्थात् अचिन्त्य-भेदाभेद सिद्धान्त सुबुद्धिमान् व्यक्तियों द्वारा ही आलोचना करने योग्य है। ऐसे उन्नत अधिकारियोंकी संख्या अल्प होना ही स्वाभाविक है। परन्तु निम्न अधिकारियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण श्रीशंकराचार्यके अद्वैतवादका अधिक आदर देखा जाता है। श्रीशंकराचार्यजीका विचार अत्यन्त स्थूल या मोटे बुद्धिवाले व्यक्तियों द्वारा ही आदरणीय है, क्योंकि उसमें कोई सूक्ष्म विचार देखा नहीं जाता। सूक्ष्म बुद्धिवाले लोग श्रीमन्महाभुजीकी बात ग्रहण किया करते हैं। स्वाभाविक रूपसे

ही ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। श्रीशंकराचार्यजीका दर्शन जो अस्मर एवं युक्तिविरुद्ध है, इस बातका शिक्षा हम वेदान्त समितिमें बालकोंको दिया करते हैं। भगवज्ज्ञानके उन्मेषके साथ साथ श्रीशंकरजी के विचार-युक्ति आदि निष्प्रभ हो पड़ती है एवं उनका ज्ञानवाद लज्जासे मस्तक ऊँचा नहीं कर पाता। गौड़ीय वेदान्त समिति सारे विश्वको यह संवाद बतलानेके लिए उठ खड़ी हुई है। हम सारे विश्ववासी सुशिक्षित व्यक्तियोंको इसकी सत्यता जाननेके लिए आह्वान करते हैं।

★

★

★

★

★

श्रीकृष्ण पूजाही निर्गुण अर्थात् गुणातीत चेतनका धर्म है। किन्तु जब तक जीव गुणों (सत्व, रजः, तम) के भीतर स्थित रहें, तब तक भगवान् कृष्णकी सेवामें उन्हें हचि नहीं होती। वे भगवान्के विभूतिस्वरूप आधिकारिक (अधिकार-प्राप्त) देव-देवी आरियोंकी पूजाके प्रति आकृष्ट होकर नश्वर फल प्राप्त करने में मुग्ध हो जाते हैं। आधिकारिक देवता लोग कृष्णकी ही शक्तिसे शक्तिमान् होकर फलकामी जीवोंकी कामना पूरण करते हैं।

श्रीमद्भागवतके (२।३।१ के) "अकाम सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुष परम् ॥"—इस श्लोक का विचार ग्रहण कर सब समय ही सर्वकामप्रेद कृष्णसेवा करना ही जीवोंके लिए

मंगलजनक है। "यावानर्थं उदपाने सर्वतः सप्लुतोदके" अर्थात् जिस प्रकार बृहत् जलाशय या सरोवर के द्वारा छोटे-छोटे विभिन्न सरोवर्गोंकी समस्त आवश्यकता की ही पूर्ति होती है, उसी प्रकार एकमात्र कृष्णकी उपासना द्वारा सब प्रकारके अनित्य एवं नित्य मंगलोंकी प्राप्ति करनेमें जीव समर्थ होते हैं। किन्तु "कामंस्तैस्तैर्हृत्तज्ज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य-देवता। तं तं नियमास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।" (गीता ७।२) अर्थात् सुकृतिरहित कामी व्यक्ति लोग दूसरे देवताओंके शरणागत होकर श्रीकृष्ण की उपासनासे वंचित होते हैं। जो भी हो, अपने अधिकारमें रहकर उस उस अधिकारी देवता की त्रिधिपूर्वक उपासना अर्थात् अविधिपूर्वक उपासना परित्याग कर उस उस देवताको श्रीभगवानकी विभूति जानकर एवं उन्हें

भगवानके दास-दासी जानते हुए कृष्णको ही सारे चेतन एवं अचेतन पदार्थके प्रभु जानना आवश्यक है तथा उस उस देवताके अनुग्रह से उनके मूलरूप श्रीकृष्णकी सेवा करनेकी योग्यता प्राप्त करनी होगी।

श्रीकृष्णकी लीला एवं उनकी शक्ति नित्या है। द्वापर युगमें भगवान् श्रीकृष्णने लीला की थी। हम समय उनकी लीलाका अन्त हो गया हो, ऐसी बात नहीं है। कृष्ण-लीला नित्य वर्तमान है एवं उनकी प्रत्येक लीला अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंमें प्रत्येक क्षण चल रही है। उदाहरणके लिए खिड़कीके

भीतरसे उत्तर दिशाकी ओर देखनेवाला कोई व्यक्ति पूर्ण दिशासे पश्चिम दिशाकी ओर दौड़ रहे किसी घोड़े को केवलमात्र उसके दृष्टि-पथ से अतिक्रम करनेके समय तक ही देख पाता है, किन्तु पश्चात् उस घोड़ेको देख नहीं पाने पर भी अश्व जिस प्रकार वर्तमान रहता है, उसी प्रकार कृष्णलीला भी अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें नित्य प्रकटित है। केवलमात्र द्वापर युगके अन्तमें ही कृष्ण-लीला प्रकट हुई थी, सत्य, त्रेता या कलिमें यह लीला नहीं है, ऐसी बात नहीं है।



पौराणिक उपारव्यान

राजा यज्ञध्वज चरित्र

पूर्वकालमें यज्ञध्वज नामक चन्द्रवंशीय एक विष्णुभक्त राजा थे। वे भगवान् विष्णु के मन्दिरमें नित्य संमार्जन आदि कार्य एवं दीप-दान करते थे। समस्त भूतोंके (प्राणियोंके) प्रति उनका दयादृष्टि थी। एकबार उन्होंने मनोहर रेवानदीके तीरमें विविध कारीगरोंसे सुशोभित श्रीहरि-मन्दिरका निर्माण किया। वहाँ वे मन्दिरकी सफाई एवं दीप-दान आदि कार्यमें लगे रहते थे। वे सबदा भगवद्-चिन्ता करते हुए हरिनाम करते थे। वे श्रीहरिको प्रणाम करते एवं हरिभक्तोंके प्रति प्रीति रखते थे। वीतहोत्र नामक उनके पुरोहित विष्णुपरायण राजाके चरित्रको देखकर विस्मित हुए।

एक बार वेद-वेदांगमें सुनिपुण वीतहोत्र उन हरिभक्त, रायण राजाको बैठे हुए देखकर उनसे पूछने लगे— हे भरतवंशके भूषण परम धार्मिक हरिभक्त राजन् ! तुम विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ होने पर भी प्रतिदिन किसलिए मन्दिरकी सफाई एवं दीप जलाने आदि कार्यमें लगे रहते हो ? इसका फलकी तुम्हें क्या जानकारी है ? हे महाभाग ! तेल एवं वर्तिकाे कार्य एवं गृह-संमार्जनमें तुम सर्वदा उद्योगी हो। इसको छोड़कर भगवानको प्रिय लगनेवाले बहुतसे कार्य तो हैं, तथापि इन्हीं कार्यमें तुम्हारी चेष्टा है। जान पड़ता है कि इनमें महापुण्यकी बात तुम जानते हो। यदि रहस्यकी बात हो

एवं मेरे प्रति यदि प्रीति हो, तो मुझे कृपया बतलाओ ।

अपने पुरोहितका वाक्य सुनकर राजश्रेष्ठ यज्ञध्वज सविनय हाथ जोड़कर कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरा ही पूर्वचरित्र कह रहा है, सुननेकी कृपा करें । मैं जातिस्मर हूँ अर्थात् पूर्व पूर्व जन्मका वृत्तान्त जानता हूँ । पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें सत्ययुगमें रवंत नामक एक ब्राह्मण था । वह वेद-वेदांगमें पारदर्शी होने पर भी याजन करने अयोग्यका याजन, अविक्रय (न वेचनेयोग्य) द्रव्यकी बिक्री, पशुओं का हत्या, अति गृहित कार्य एवं निष्ठुरताका आचरण करता था । उसे ऐसा करते देखकर उसके स्वजनोसे उसका परित्याग कर दिया । तब वह दूसरे उपाय रहित होकर अन्न-वस्त्र आदिके लिए विभिन्न देशोंमें भ्रमण करने लगा अन्तमें दुःख एवं दरिद्रताके वशीभूत एवं दुःशील होनेके कारण व्याधिग्रस्त हो गया । लसो एवं श्वासकी पीड़ासे नर्मदा नदीके तीरमें उसकी मृत्यु हो गयी ।

उसके पश्चात् उसकी पत्नी बन्धुमतीको व्यभिचारिणी होते देखकर बान्धवोंने उसका भी परित्याग कर दिया । उस स्त्रीके गर्भसे महापापाचारी, ब्राह्मण-द्वेषी, परस्त्री-लोलुप, परद्रव्याभिलाषी प्राणी-हिंसक, मद्यपायी, निन्दक, अतिगृहित कार्यपरायण, मार्गरोधक (डाकू) एवं पशु-पक्षी आदि प्राणियोंकी हत्या करनेवाला एवं उन जीवोंके लिए कालान्तक रूप दण्डकेतु नामसे चांडाल होकर मेरा जन्म हुआ । तबसे मैंने असंख्य गो-ब्राह्मण-मृग-पक्षी आदिका बध किया एवं सुमेरु पर्वतके समान

बहुत सोनेका अपहरण किया । एकबार मैं काम से पीड़ित होकर परस्त्रीके साथ रति (समागम) करनेकी कामनासे रात्रिके समय पूजादि रहित एक विष्णुमन्दिरमें गया था । हे ब्रह्मन् ! वहाँ आने उपभोगके लिए शयन करने जाकर वस्त्र के अग्र भाग (छोर) द्वारा वहाँ थोड़ेसे जगहका धूलि मैंने झाड़ दिया था । मैंने जितनी धूलिकण झाड़े थे, उतने जन्मोंके पाप उसी समय नष्ट हो गये । हे द्विजोत्तम ! रति-काम करनेके लिए मेरे द्वारा प्रदीपका स्थापन किये जानेके कारण मेरे मारे पाप सम्पूर्ण नष्ट हो गये । इतनेमें नगरके रक्षक लोगोंने वहाँ आकर चोर समझते हुए हम दोनोंका बध किया । तुरन्त उसी नारीके साथ सबभोगोंसे परिपूर्ण दिव्य विमानमें चढ़कर विष्णु लोकमें मैं पहुँचा । वहाँ ब्रह्माका सम्पूर्ण एकसौ कल्प काल वास कर फिर ब्रह्मलोकमें मैंने उतना ही समय वास किया । इसके पश्चात् दिव्य भोगोंके साथ उतने ही समय स्वर्गमें रहकर अदृष्ट क्रमसे उसी पुण्यके प्रभावसे इस समय मर्त्यलोकमें यदुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ एवं निर्विघ्न होकर राज्य एवं सम्पत्तिका भोग कर रहा हूँ । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यदि इस प्रकार स्त्री-संग करनेकी इच्छासे मन्दिर-संभाजन एवं दीपदान कर मैंने इस श्रेयः फल प्राप्त किया है; तब मैं नहीं जानता कि जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक यह कार्य करें, उन्हें क्या फल मिलेगा । अतएव हे साधुवर ! मैं पूर्व-जन्मका ज्ञाता होनेके कारण परम भक्तिके साथ इस समय दीपदान एवं मन्दिरकी सफाई आदि में विशेष यत्नके साथ लगा रहता हूँ ।

(कमण्डः)